कक्षा में भीड़

पिछले दिनों एक स्कूल की नवीं कक्षा में गया। लगभग अठारह फुट लम्बे और बारह फुट चौड़े कमरे में, जिसमें एक तरफ दो दरवाज़े और दूसरी तरफ तीन खिड़कियाँ थीं, कोई पचास लड़कियाँ इस कक्षा में पढ़ती हैं। कमरे के एक कोने में लकड़ी का बोर्ड है, अध्यापिका के लिए एक मेज़ और कुर्सी, लड़कियों की पहली तीन पंक्तियों के लिए टाट-पट्टी और डेस्क, तथा बाकी लड़कियों के लिए सिर्फ टाट-पट्टी की व्यवस्था है। अध्यापिका की मेज़ कुर्सी कक्षा के एक सिरे पर है, इसलिए वे लड़कियों की पहली पँक्ति के बिल्कुल करीब और पिछली पंक्ति से बहुत दूर हैं।

अध्यापिका ने मुझे बताया कि वे सप्ताह में लगभग 32 घंटियाँ पढ़ाती हैं और इस तरह की पाँच कक्षाओं में जाती हैं। इस प्रकार लगभग 250 लड़कियाँ उनके सम्पर्क में आती हैं या एक विषय के लिए उनके ज़िम्मे हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि उनकी परिस्थिति में कौन-सी नई तकनीकें इस्तेमाल की जा सकती हैं? मैं उनका उत्साह देखकर दंग रह गया। उनके साथ बातचीत में कई बार मेरे मुँह से निकला कि उनकी परिस्थिति बहुत कठिन और उनकी समस्याएँ बड़ी भारी हैं क्योंकि एक कक्षा में 50 बच्चों या कुल मिलाकर 250 बच्चों की देखरेख करना लगभग असम्भव काम है। बातचीत के दौरान मुझे लगा कि मेरी भूमिका सिर्फ एक हमदर्द की हो सकती है क्योंकि असली परिवर्तन तो प्रशासक या अध्यापक संगठन ही करेंगे। अध्यापिका ने मुझसे पूछा : ग्जब तक परिवर्तन नहीं होता तब तक क्या करूँ?रु

उनका यह सवाल मेरी समझ में राष्ट्रीय महत्व का है। भारत में आप जहाँ जाइए, आप पाएँगे कि लोग किसी व्यापक परिवर्तन, किसी नए प्रबन्ध की तीव्र प्रतीक्षा कर रहे हैं और प्रतीक्षा के दौरान कोई खास काम नहीं कर पा रहे, न ही स्वां स्फूर्तिशील व स्वस्थ रह पा रहे हैं क्योंकि परिस्थितियाँ इतनी खराब हैं कि न तो कोई काम किया जा सकता है, न स्वस्थ रहा जा सकता है। 250 बच्चों की देखरेख करना ऐसी ही एक बहुत विकट परिस्थति है।

अध्यापिका की परिस्थिति तो खराब हैं ही, उनके स्कूल की लड़कियों की परिस्थिति और भी खराब हैं। अध्यापिकाएँ वयस्क हैं, अपना आधा जीवन जी चुकी हैं। लड़कियाँ अपना जीवन शुरू कर रही हैं। कक्षा और स्कूल का एक-एक अनुभव उनके सामाजिक और राजनीतिक संस्कार रच रहा

है। नवीं कक्षा में वे पहली तीन पंक्तियों में वे डेस्क के साथ और अध्यापिका के पास बैठी हैं या पिछली पंक्तियों में टाट-पट्टी पर कमर झुकाए भीड़ का एक हिस्सा बनी बैठी हैं, ऐसी प्रत्येक स्थिति उनके संस्कारों का हिस्सा बन रही हैं और उनकी आत्मछवि को ढाल रही हैं।

इस स्कूल के किसी भी कमरे में अध्यापक की मेज़ के लिए 4ग्र 3 फुट जगह देना अनुचित है। अध्यापिका का कक्षा के एक सिरे पर खड़ा होना भी अनुचित है। स्कूल में जितनी भी जगह है और जितनी अध्यापिकाएँ हैं, उनका जनतांत्रिक रीति से उपयोग होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि स्कूल की प्रत्येक छात्रा की अध्यापिका के ध्यान में हिस्सेदारी बराबर होनी चाहिए। यह तभी सम्भव है जब प्रत्येक कक्ष्ज्ञा के पारम्परिक विन्यास को तिलांजलि दे दी जाए। कक्षा के एक कोने में खड़ी न होकर अध्यापिका यदि कक्षा के बीच में बैठें और छात्राओं को अपने गिर्द एक वृत्त में बिठाएँ तो वे अपनी पहुँच अपेक्षाकृत अधिक समतापूर्वक बाँट सकेंगी। डेस्क नवीं कक्षा से निकालने ही होंगे। उनका उपयोग तभी है जब वे सबके लिए उपलब्ध हों।

नए विन्यास से नवीं कक्षा में क्राँति नहीं हो जाएगी। पर इस विन्यास की अपनी माँगे हैं जो कक्षा में शामिल लोंगों की भावनाओं और भावनाओं पर आधारित दृष्टिकोणों को प्रभावित करेंगी। इस विन्यास की आधारभूत माँग होगी : जो भी हमारे पास है उसका पूरा उपयोग सब लोगों में बराबर बाँटकर करें। यह माँग अध्यापिकाओं और छात्राओं के व्यवहार को प्रभावित करेगी। अध्यापिका और छात्रा के व्यवहार को प्रभावित करेगी। अध्यापिका और छात्रा के बीच की दूरी कम होगी और यदि ऐसा हुआ तो सम्भव है कि अध्यापिका भाषण के स्थान पर संवाद पर आधारित तकनीकें स्वयं खोज सकें। कक्षा के एक कोने में खड़े होकर सिर्फ भाषण दिया जा सकता है और दूसरे कोने में बैठकर सिर्फ सुना जा सकता है। संवाद तभी संभव है जब अध्यापिका और छात्रा वक्ता और श्रोता का अभिनय न कर रही हों।

यदि इस कक्षा में कभी नाटकीय पद्धति से कोई विषय पढ़ने का समय आया तो नया विन्यास बहुत मददगार साबित होगा। नाटक की मूल अवधारणा है संवाद और उसकी शक्ति है कल्पना। बच्चों के जीवन से नाटक का सीधा-सीधा सम्बन्ध है। उनमें नैसर्गिक नाटकीय प्रतिभा होती है जिसे स्कूल की सामन्ती या अफसरी सभ्यता (मौजूदा व्यवस्था में

अध्यापक कक्षा के सामन्त की तरह का ही न व्यवहार करता है?) बच्चों को एक तरफ पँक्तियों में बिठाकर और अध्यापक को दूसरी तरफ खड़ा करके नाटक की शिक्षायी संभावनाओं का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। नाटकीय परिस्थिति में अध्यापक शिक्षा का दाता और बच्चे शिक्षा के ग्राहक नहीं रह जाते। दोनों एक जीवन्त प्रक्रिया के हिस्सेदार बन जाते हैं। इसी कारण नाटक का कक्षा में इस्तेमाल अध्यापक और बच्चों के बीच की दूरी कम करता है।

किन्तु नाटक का इस्तेमाल यहाँ एक उदाहरण भर है और जिस विन्यास की चर्चा मैंने की है, वह भी उदाहरणस्वरूप है। असली प्रश्न यह है कि यदि हम बच्चों की बहुत अधिक संख्या वाले सरकारी स्कूल में पढ़ाते हैं तो अपनी कक्षा के बच्चों को भीड़ बनने से कैसे रोंके? इस प्रश्न का सबसे वाजिब उत्तर यह प्रश्न हो सकता है कि बहुत अधिक संख्या में बच्चों को अपने सामने पाकर हम स्वयं नेता बनने से कैंसे बचें? जब अध्यापक नेतृत्व करने लगता है तो बच्चे भीड़ बन जाते हैं।